RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

'संस्कृति के चार अध्याय' : भारत की समावेशी संस्कृति का दस्तावेज

डॉ. राज भारद्वाज

एसोसिएट प्रोफेसर भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी काव्य–चेतना राष्ट्रीय मूल्यों से ओत–प्रोत है। इसी राष्ट्रीय चेतना के तहत दिनकर ने अपने काव्य में भारतीय इतिहास के उज्जवल पक्षों का हवाला बहुतायत से दिया है। इतिहास के प्रति यही जिज्ञासा और आदर का भाव दिनकर के भीतर वो संकल्प पैदा करता है जिसके वशीभूत होकर दिनकर पाँच वर्ष के अथक परिश्रम के बाद 'संस्कृति के चार अध्याय' के रूप में एक विलक्षण ग्रन्थ लेकर उपस्थित होते हैं जिसमें गद्य–लेखन पर उनकी अचूक पकड़ के साथ ही भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति उनका दृष्टिकोण भी सामने आता है और सामने आता है भारत की समन्वयी एवं समावेशी संस्कृति का विराट रूप – जो अपने कण–कण में विभिन्न जातियों, धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, विचारधाराओं को इस उदारता से समाहित किये हुए है, जैसे समुंद्र विभिन्न नदियों के जल को अपने भीतर समा लेता है और भारतीय संस्कृति के इस समुंद्र में पछाड़ खाती लहरें बेशक विविध रूपी दिखती हों किंतु इन सबके के भीतर ऐसे तत्व भी हैं जो इन्हें आपस में जोड़ते भी हैं। '' 'संस्कृति के चार अध्याय' हिन्दी के ओजस्वी कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है, जिसमें उन्होंने कला, साहित्य और संस्कृति की त्रिवेणी का अवगाहन करके देश के प्रबुद्ध मानस को ही नहीं झकझोरा, प्रत्युत इससे इतिहासवेत्ताओं, समाज–सुधारकों तथा कला–साधकों को एक नवीन दिशा का निर्देश मिला है।"[i]

'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। लेखक के मतानुसार भारतीय संस्कृति के इतिहास में चार बड़ी क्रांतियाँ हुई हैं जिनसे हमारी संस्कृति निर्मित हुई है। पहली क्रान्ति आर्यों के भारत में आगमन और आर्येतर जातियों से उनके संपर्क से होती है। इन दोनों जातियों ने मिलकर जिस समाज और संस्कृति की रचना की वहीं भारत का बुनियादी समाज और संस्कृति बनी। इस बुनियादी संस्कृति के अवयवों में इन आर्य और आर्येतर जातियों का सम्मिलित योगदान है। दूसरी क्रान्ति महावीर और गौतम बुद्ध ने स्थापित संस्कृति या धर्म के विरुद्ध विद्रोह के रूप में की और 'उपनिषदों की चिन्तनधारा को खींच कर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गए।' इस क्रान्ति ने जहाँ भारतीय संस्कृति का पोषण किया वहीं इसके कारण भारतीय धर्म और संस्कृति में कुछ विकृतियाँ भी आ गयी। तीसरी क्रान्ति इस्लाम के भारत में विजेताओं के धर्म के रूप में पहुँचने और हिंदुत्व से उसके संपर्क से हुई। चौथी क्रान्ति भारत में यूरोपीय शक्तियों के आगमन, उनके साम्राज्य–स्थापन और इस्लाम–हिंदुत्व के संपर्क से हुई। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की इन चार प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को केंद्र में रखकर अत्यंत सूक्ष्मता और गहराई से भारत की सामासिक संस्कृति का विवेचन–विश्लेषण इस पुस्तक में किया गया है। "....लेकिन यह चर्चा इतिहास की, युद्ध के मैदान में संघर्षों की या राजवंशों के विकास की नहीं या एकमात्र उन्हीं की नहीं है बल्कि उनसे आगे बढ़कर भारतीय मानस के उथल–पुथल, संयोजन–संगठन और पारस्परिक ग्रहण–त्याग की है, हमारे आन्तरिक व्यापार की है और इस बहाने हमारे आचार–विचार, दर्शन–चिन्तन और व्यक्तित्व निर्माण की है।" [ii] पण्डित विद्यानिवास मिश्र भी भारतीय संस्कृति के इस समावेषी स्वरूप की रोचक व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार ''भारत की संस्कृति 'भरतमय' है। तुलसीदास जी कहते है कि भारत की महिमा बस राम जानते है, पर वे भी व्याख्या करने में असमर्थ हो सकते हैं –

> भरत महामहिमा सुनुरानी, जानहि राम न सकहिं बखानी।
> भरत सरिस को राम सनेही, जग जपु रामु रामु जपु जेही।।''[iii]

भारत की वर्तमान स्थिति में जब संस्कृति और राष्ट्रवाद की नये सिरे से व्याख्या हो रही है, उस स्थिति में भारत की एकता के सूत्र को समझने में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी और सार्थक सिद्ध हो रही है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने इस पुस्तक की भूमिका में इसकी उपादेयता पर विचार करते हुए लिखा है कि भारत को समझने में रामधारी सिंह दिनकर कृत यह पुस्तक काफी हद तक सहायक होगी – "यह संभव है कि संसार में जो बड़ी–बड़ी ताकतें काम कर रही हैं, उन्हें हम पूरी तरह न समझ सकें, लेकिन इतना तो हमें समझना ही चाहिए कि भारत क्या है और कैसे इस राष्ट्र ने अपने सामासिक व्यक्तित्व का विकास किया है; उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू कौन–से हैं और उसकी सुदृढ़ एकता कहाँ छिपी हुई है। भारत में बसने वाली कोई भी जाति यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन और विचारों पर उसी का एकाधिकार है। भारत आज जो कुछ है, उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है। यदि हम आज इस बुनियादी बात को नहीं समझ पाते तो फिर हम भारत को भी समझने में असमर्थ रहेंगे और यदि भारत को हम नहीं समझ सके तो हमारे भाव, विचार और काम, सब–के–सब अधूरे रह जायेंगे और हम देश की ऐसी कोई सेवा नहीं कर सकेंगे, जो ठोस और प्रभावपूर्ण हो।"

जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो हिन्दी आलोचना–जगत में गहन विचार–विमर्श हुआ। कई आलोचकों ने 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक को तत्कालीन राजनीति से प्रेरित बतलाते हुए इसकी स्थापनाओं को सिरे से खारिज कर

RRIJM 2015, All Rights Reserved

दिया। वहीं मन्मथनाथ गुप्त ने प्रस्तुत पुस्तक में नारी के स्थान, आचरण की भिन्नता और उस आचरण के प्रति नियमों की पारस्परिक भिन्नता जैसी कमियों को दिखाया है किन्तु बावजूद इसके उन्होंने इस पुस्तक को 'भारतीय संस्कृति का विश्वकोश' भी कहा है। देवराज दिनकर द्वारा उल्लिखित स्वामी दयानंद और राजा राममोहन राय की कमियों से सहमत नहीं है फिर भी उन्होंने दिनकर को 'जनतंत्री लेखक' के नाम से अभिहित किया है। डॉ. दीक्षित जी के अनुसार "दिनकर के प्रयत्न की विशेषता यही है कि भारतीय देन को लक्ष्य में रखकर भी वह भारत की एकपक्षीय प्रशंसा के लिए कटिबद्ध नहीं रहे हैं बल्कि उन्होंने उस संस्कृति की ह्रासोन्मुखता पर भी विचार किया है और उससे बचने का इस तरह प्रकारान्तर से इशारा भी किया है।"

भारतीय जनता की रचना का विश्लेषण करते समय दिनकर अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध करते हैं कि वर्तमान समय की भारतीय जनता किसी एक जाति की न होकर कई–कई जातियों का मिश्रण है और ये जातियाँ हजारों वर्षों के प्रवाह में इस तरह घुल–मिल गयी हैं कि इनको पृथक–पृथक परिभाषित करना असंभव है और ऐसा भारतीय संस्कृति के समावेशी स्वभाव के कारण ही हो सका है – "अगर ईसाइयों और मुसलामानों को छोड़ दें, तब भी, इस देश में एक के बाद एक, कम–से–कम, ग्यारह जातियों के आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है, जिन्होंने इस देश को ही अपना देश मान लिया और जिनका एक–एक सदस्य यहाँ की संस्कृति और समाज में भलीभाँति पच–खप कर आर्य अथवा हिन्दू हो गया। नीग्रो, औष्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल और मुस्लिम–आक्रमण के पूर्व आने वाले तुर्क इन सभी जातियों के लोग कई झुंडों में इस देश में आये और हिन्दू–समाज में दाखिल होकर सब–के–सब उसके अंग हो गये। असल में, हम जिसे हिन्दू–संस्कृति कहते हैं, वह किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि, इन सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है।"[iv] इसी प्रकार विश्व–भर में इंसानी जाति के मुख्यतः तीन रंग पाए जाते हैं – गोरे, काले और पीले। दिनकर बड़े गर्व के साथ लिखते हैं कि "भारतीय जनता में इन तीन रंगों के प्रतिनिधि मौजूद हैं और रंगों की दृष्टि से भी भारतीय मानवता विश्व–मानवता का अद्‌भुत प्रतीक मानी जा सकती है।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''जो बात और भी ध्यानपूर्वक लक्ष्य करने की है, वह यह है कि यह 'मध्यदेष' वैदिक युग से लेकर आज तक अतिषय रक्षणषील और पवित्राभिमानी रहा है। एक तो भिन्न विचारों और संस्कृतियों के निरन्तर संघर्ष ने और दूसरी तरफ रक्षणषीलता और श्रेष्ठ तत्वाभिमान ने इसकी प्रकृति में इन दो बातों को बद्धमूल कर दिया है – एक अपने प्राचीन आचारों से चिपटे रहना पर विचार में निरन्तर परिवर्तित होते रहना, और दूसरे धर्मों, मतों, सम्प्रदायों और संस्कृतियों के प्रति सहनषील होना।''[v]

अक्सर भारत की संस्कृति और इतिहास के विश्लेषण में यह कह दिया जाता है कि आर्य और द्रविड़ परस्पर भिन्न संस्कृतियाँ है किन्तु दिनकर ने अनेक उदाहरणों से यह सपष्ट किया है कि दोनों ही जातियाँ अपनी प्राचीनता में असंदिग्ध हैं और कौन–सी पहले आयी इसका केवल अनुमान लगाया जाता है, निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता किन्तु दोनों का अवदान महत्त्व रखने वाला है – "पीछे की ओर दृष्टि डालकर इतिहास की अतल गहराइयों में जाने पर भी हम यही देखते हैं कि आर्य और द्रविड़ नाम से अभिहित किये जाने वाले भारतवासियों का धर्म एक है, संस्कार एक है, भाव और विचार एक हैं तथा जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण भी एक ही है।" – दोनों जातियाँ शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन और बौद्ध धर्मों से प्रेरित–प्रभावित रहीं। साहित्य में भी इनकी भाव और शैली मिलती है। स्थापत्य और वास्तु कला में भी स्थानीय विशेषताओं को छोड़ दिया जाए तो मूल एक जैसा ही मिलता है।

भारत की भौगोलिक एकता का भाव भी इन दोनों जातियों के आपसी मेल–मिलाप को दर्शाता है। समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिणवाला भू–भाग यहाँ हमेशा से एक देश माना जाता रहा है –

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिण्
वर्षं तद्‌भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।" (वायु पुराण)

आज भी धार्मिक आस्था वाले व्यक्ति स्नान के समय भारत की विभिन्न नदियों के नाम एक साथ लेते हैं –

"गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु काबेरी जलेऽस्मिन्‌ऽत्रिधं कुरु।"

इसके साथ ही मोक्षदायिनी नगरियों में भी उत्तर–दक्षिण को समान प्रधानता मिली है –

"अयोध्या–मथुरा–माया–काशी–कांची–अवन्तिका
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैतारू मोक्षदायिका।"

वैदिक संस्कृति को दिनकर ने प्रवृतिमूलक कहा है क्योंकि उस संस्कृति में इस पृथ्वी पर रह रहे प्राणियों के शुभ जीवन की अर्चनाएँ और आकांक्षाएँ मिलती हैं, पृथ्वी से इतर जीवन की चिंता वहाँ नहीं है। "वैदिक युग के आर्य मोक्ष के लिए चिंतित नहीं थे, न वे संसार को असार–मानकर उससे भागना चाहते थे। उनकी प्रार्थना की ऋचाएँ ऐसी हैं, जिनसे पस्त–से–पस्त आदमियों के भीतर भी उमंग की लहर जाग सकती है। उन्हें ऋत का ज्ञान प्राप्त हो चुका था और वे मानते थे कि सारी सृष्टि किसी एक ही प्रच्छन्न शक्ति से चालित और ठहरी हुई है तथा उस शक्ति की आराधना करके मनुष्य जो भी चाहे, प्राप्त कर सकता है। किन्तु, बराबर उनकी प्रार्थना लम्बी आयु, स्वस्थ शरीर, विजय, आनंद और समृद्धि के लिए की जाती थी। वैदिक प्रार्थनाएँ, प्रार्थनाएँ भी हैं, और सबल, स्वस्थ, प्रफुल्ल जीवन को प्रोत्साहन देने वाले मन्त्र भी।

हम सौ वर्षों तक जियें।
हम सौ वर्षों तक अपने ज्ञान को बढाते रहें।
हम सौ वर्षों तक पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करें।
हम सौ वर्षों तक आनंदमय जीवन व्यतीत करें।"

उपनिषदों में निवृत्तिमूलक दृष्टि दिखलाई पड़ती है। यहाँ सृष्टि, उसकी उत्पत्ति, अदृश्य शक्ति आदि जिज्ञासाओं और सूक्ष्म प्रश्नों की अधिकता है। "असल में, उपनिषद वेद के

उन स्थलों की व्याख्या है जिनमें यज्ञों से अलग हटकर ऋषियों ने जीवन के गहन तत्त्वों पर विचार किया है।"

उपनिषदों के समय यज्ञों के अति–प्रचार और कर्मकांडों के कारण सामान्य जनता में क्षोभ उत्पन्न होने लगा था जिसकी परिणति जैन और बौद्ध धर्मों के रूप में हुई। इन दोनों धर्मों ने पुरोहित–परम्परा की विशिष्टता को नकारते हुए मनुष्य मात्र को समान माना, अहिंसा की धारणा को सिद्धांत एवं व्यवहार में पुनः व्यापक अर्थ दिया। जैन धर्म ने अनेकान्तवाद के सिद्धांत के अंतर्गत वैचारिक अहिंसा की शिक्षा देते हुए सहिष्णुता की भावना का पोषण किया। वहीं बौद्ध धर्म ने जन्मना वर्ण व्यवस्था को चुनौती देते हुए समाज के हर मनुष्य को सम्मान दिया और सबके लिए धर्म के समान रास्ते खोले और इसी कारण बौद्ध धर्म की लोकप्रियता आज भी बनी हुई है। डॉ. राधाकृष्णन के विचार हैं – "बौद्धिक शंकाओं से भरा हुआ पंडित, समाजवादी आदर्शों का प्रेमी नौजवान, नैतिक ऊहापोह में उलझा हुआ प्राणी और बुद्धिवाद की रोशनी में चलने का दावा करने वाला पैगम्बर, वे सब–के–सब, समय–समय पर, बुद्धदेव का नाम लेते हैं और जगह–जगह, अपनी बात को ऊपर करने के लिए उनके वचनों का उदाहरण देते हैं।"

कई राजाओं ने बौद्ध धर्म के प्रसार–प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बौद्ध धर्म विदेशों में भी पहुँचा किन्तु आगे चलकर बौद्ध धर्म की कई शाखाएँ हो गयी – महायान, हीनयान, वज्रयान जैसी शाखाओं और मठों में व्याप्त वामाचार – जैसे कृत्यों ने बौद्ध धर्म को उसके मूल रूप से बहुत दूर कर दिया और जिसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म अपनी विश्वसनीयता खो बैठा। यही से सनातन धर्म और बौद्धों का संघर्ष चल पड़ा।

'रामायण' और 'महाभारत' – भारत के ये दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें यहाँ की संस्कृति के सारे अवयव मिलते हैं। उच्च जीवन–मूल्यों और आदर्शों के कारण आज भी भारत और भारत से बाहर इन दोनों ग्रंथों की लोकप्रियता, उपादेयता और प्रासंगिकता बनी हुई है – "भारत की एकता की सेवा भी, सबसे अधिक, इन्हीं दो महाकाव्यों ने की। लंका, पम्पापुर और अयोध्या, देश के इन तीन भू–भागों की कथाओं को एक ही राष्ट्रीय महाकाव्य में गूँथकर वाल्मीकि ने भारत की सांस्कृतिक ही नहीं, भौगोलिक एकता को भी अक्षय तत्त्व बना दिया। इसी प्रकार, महाभारतकार ने भी देश के विभिन्न भागों में फैली हुई विचारधाराओं एवं संस्कृतियों को एक स्थान पर लाकर इस प्रकार गुम्फित कर दिया कि महाभारत सारे देश की जनता का कण्ठहार हो गया। कोई आश्चर्य नहीं कि कालिदास से लेकर आज तक के सभी भारतीय भाषाओं के कवि रामायण और महाभारत की कथाओं पर काव्य–रचना करते रहे हैं। सारे देश का साहित्य आज भी रामायण और महाभारत का क्षीर–पान कर बलिष्ठ हो रहा है, जिससे आप–से–आप यह सत्य ध्वनित हो उठता है कि भारत की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही संस्कृति है, जिसकी सेवा विभिन्न भाषाओं में की जा रही है।"

भारतीय संस्कृति का विदेशों में खूब प्रचार हुआ और वहाँ के विद्वानों ने अनेक बातें यहाँ से ग्रहण की। ईरान से तो संपर्क सर्विदित है ही। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक पिथेगोरेस के चरितलेखक ने उनके गणित, जन्मान्तरवाद, पुनर्जन्म के सिद्धांत आदि पर भारतीय प्रभाव माना है। इसी प्रकार अफलातून के 'रिपब्लिक' पर भी यहाँ की वर्ण–व्यवस्था का प्रभाव झलकता है। सिकंदर के भारत आगमन, अशोक द्वारा बौद्ध–धर्म के प्रचार, विदेशियों की भारत–भ्रमण, व्यापार के सिलसिले, तक्षशिला विश्वविद्यालय – आदि अनेक कारणों से भारतीय संस्कृति रोम, अरब, मिस्र, चीन, बर्मा, जापान तक फैली। भारत में लोकप्रिय जातक, पंचतंत्र, हितोपदेश की कहानियाँ विदेशों में पहुँची। गणित, विज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद के क्षेत्र में भी भारत समृद्ध था। विश्व को भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं अन्यतम देन है – योग। आधुनिक समय में विज्ञान ने भी योग की उपयोगिता और महत्त्व को स्वीकारा है। भरत में योग को शारीरिक से ज्यादा आध्यात्मिक शक्ति माने जाने की परम्परा रही है। वस्तुतः "योग की प्रक्रिया, बहुत दूर तक मनोविज्ञान की प्रक्रिया है, यह सत्य है। भारतीय परम्परा में योग चित्तवृत्ति के निरोध को कहते हैं; "योगः चित्तवृत्ति–निरोधः" योग शरीर की क्रिया से मन को नियंत्रित करने का उपदेश देता है। वह आत्मा की गहराई का संधान करने वाली विद्या का नाम है। वह हलचल और प्रलोभनों के बीच मन को स्थिर रखने की कला है। मनोविज्ञान ने अवचेतन का अनुमान भर लगाया है, योग अवचेतन मन तक जाने का मार्ग है।" बाली, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो में अब भी भारतीयता के सूत्र उपलब्ध हैं।

वर्तमान भारत में हिन्दू–मुस्लिमों के पारस्परिक सम्बन्ध सांप्रदायिक समस्या के रूप में विकराल होते जा रहे हैं। दिनकर ने इस्लाम धर्म के वास्तविक स्वरुप और उसके मूल्यों का परिचय, उसका विश्व में प्रसार एवं भारत में प्रवेश का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए अनेक उदाहरणों से दिखलाया है कि इस्लाम और हिन्दू संस्कृति के पारस्परिक आदान–प्रदान ने दोनों को ही आचार–व्यवहार, खान–पान, रीति–रिवाज और रहन–सहन के क्षेत्र में प्रेरित–प्रभावित व समृद्ध किया है और उनमें कई समानताएँ भी हैं। उदाहरणतः "कुरान का फातिहा नामक अध्याय गीता के दूसरे अध्याय के समान है। मुस्लिम मानसिकता के निर्माण में सबसे अधिक प्रभाव इसी अध्याय का रहा है। यह कर्मफल के विवेचन का अध्याय है जिसकी ओर प्रत्येक मुसलमान का ध्यान हर रोज पाँच बार दिलाया जाता है। कारण यह है कि कर्मफलवाद में विश्वास के दृढ़ होने से आदमी अपकर्म को छोड़ने की प्रेरणा पाता है। छिप कर भी किया हुआ कर्म अपना फल अवश्य लाता है। कुरान कहता है, "अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम अवश्य मिलेंगे। जिसने भी, कण–मात्र भी, सुकर्म किया है, वह उसे अपनी आँखों से देखेगा जिसने भी, कण–मात्र भी, दुष्कर्म किया है, वह भी उसे अपनी आँखों से देखेगा।"

इसके साथ ही दिनकर ने हिन्दू–मुस्लिम के आपसी द्वेष–भाव के एतिहासिक–राजनीतिक–सामाजिक–धार्मिक कारणों की पड़ताल भी की है – "इस्लाम प्रभावित होने से डरता है, क्योंकि, संशोधित, प्रभावित अथवा सुधरा हुआ इस्लाम इस्लाम नहीं है। उधर हिंदुत्व हमेशा इस बात का अभिमानी रहा है कि हिन्दू हिंदुत्व के भीतर चाहे पतित ही समझा जाय, किन्तु जन्मना वह संसार के अन्य सभी लोगों से श्रेष्ठ है। इस्लाम की यह कट्टरता कि हमारा वही रूप ठीक है जो नबी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

ने प्रवर्तित किया था और हिंदुत्व का यह आग्रह कि धर्म के मामले में, हमें किसी से कुछ नहीं सीखना है, ये दोनों बातें दीवार बनकर इस्लाम और हिंदुत्व के बीच खड़ी रही हैं।"

नवोत्थान का माहौल तैयार करने वाली परिस्थितियों की विस्तृत चर्चा करते हुए दिनकर ने यूरोपीय शिक्षा और सभ्यता के भारत में विस्तार, इनके संपर्क में आने पर भारतीयों द्वारा अपनी सभ्यता और तत्कालीन दशा पर विचार करने की प्रेरणा और उन परिस्थितियों में अपनी संस्कृति को जिलाए रखने के भावों और विचारों के वाहक महापुरुषों के योगदान का क्रमिक विश्लेषण किया है। जिसके अंतर्गत बंगाल में राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज की संकल्पना, महर्षि देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद का योगदान रेखांकित किया है। इसके बाद महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानाडे, आगरकर, बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले का अवदान बतलाया है। उत्तर भारत में स्वामी दयानंद और आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी और श्रीमती एनी बेसेंट, महर्षि अरविन्द का साधना–मार्ग आदि के विषय में बतलाते हुए यह सिद्ध किया है कि सभी अलग–अलग रास्तों और शब्दों में भारतीय संस्कृति और इसके मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा के माध्यम से भारतीयों को आत्मविश्वास और स्वाभिमान से पूरित कर वर्तमान विश्व के सामने खड़ा कर करना चाहते थे। यही कार्य महात्मा गाँधी ने अपने प्रयोगों में किया और चिंतन के अनुरूप कर्म करते हुए सर्वधर्म समभाव और आचार को नए ढंग से लोगों के सामने रखते हुए स्वतंत्रता का मन्त्र फूंका। उनके अनुसार "गाँधी धर्म वह है जिससे प्रत्येक धर्म की धार्मिकता में वृद्धि होती है। अच्छा गाँधी मार्गी अच्छा हिन्दू भी है तथा अच्छा मुसलमान और अच्छा क्रिष्चिन भी।" इसी क्रम में श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने विश्वदर्शन का प्रवर्तन करते हुए पूर्व और पश्चिम के मिलन, विज्ञान की सार्वभौमिकता, धर्म की जीवन से एकाकारता का वर्णन किया है। मुहम्मद इकबाल की क्रमशः राष्ट्रीयता और धार्मिकता, जीवन–दर्शन, खुदी का सिद्धांत, महामानव की संकल्पना बतलाते हर भारतीय राष्ट्रीयता और मुसलमान शीर्षक के अंतर्गत हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के पारस्परिक संबंधों की चर्चा की है जिसमें अंग्रेजों की भेद–नीति और उससे हुए साम्प्रदायिकता के विस्फोट की भूमिका रही है। मुस्लिम कवियों की राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में दिनकर ने अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, जोश मलीहाबादी, जमील मजहरी, सागर निजामी, सीमाब अकबराबादी जैसे उर्दू–कवियों और बंगला के कवि काजी नसरूल इस्लाम की रचनाओं का सोदाहरण उल्लेख किया है।

हिन्दू–मुस्लिम एकता की राह में पहली शर्त दिनकर ने यह बतलाई है कि हिन्दू छूआछूत की भावना का सर्वथा त्याग करे। दूसरी शर्त यह कि भारत के मुसलमान अपनी धर्म–भक्ति और स्वदेश–प्रेम के बीच सामंजस्य बिठाते हुए अपने सम्बन्ध में फैली आशंका को निर्मूल कर दें। इसी तरह एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं कि वह हिन्दू अन्य हिन्दुओं से श्रेष्ठ है, जो अपने धर्म के सिवा इस्लाम पर भी श्रद्धा रखता है और वह मुसलमान भी अन्य मुसलमानों से श्रेष्ठ है, जो अपने मजहब के सिवा हिन्दू धर्म का भी सम्मान करता है। हिन्दू–मुस्लिम एकता की दृष्टि से दिनकर ने कबीर, अकबर और महात्मा गांधी की सोच और उनके कार्यों को महत्त्वपूर्ण माना है।

भाषा–भेद की समस्या पर भी दिनकर विचार करते हैं और उसका समाधान देते हैं कि अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी और हिन्दी क्षेत्रों में अहिन्दी भाषाओं के प्रसार से इस समस्या का समाधान तलाशा जाना चाहिए। भारत की वर्तमान भाषाओं का उद्‌गम एक ही अर्थात संस्कृत भाषा है। संस्कृत वह शक्ति रही है जिसने संस्कृति के विभिन्न उतार–चढावों, उसके मूल्यों, उसकी विकृतियों आदि को धारण करते हुए अनवरत अभिव्यक्ति को जिलाए रखा। "प्रत्येक प्राचीन जाति का संस्कार, उसकी आत्मा और उसके प्राण उसकी अपनी भाषा में बसते हैं। भारत की आत्मा और भारत के सूक्ष्म संस्कारों का निवास संस्कृत में है। संस्कृत इस देश में बसने वाले लोगों की सेवा, और नहीं तो, तीन–चार हजार वर्ष से करती आयी है। भारत की सभी भाषाएँ संस्कृत के घाट पर पानी पीकर जीती आयी हैं और आज भी उनका उपजीव्य यही भाषा है। भारत की आधुनिक भाषाओं में नए शब्द बनाने की शक्ति समाप्त है। अब भारत की जो भी भाषा नया शब्द खोजती है, उसके सामने संस्कृत की ओर जाने के सिवा और कोई राह नहीं है। इसी संस्कृत पर आधारित होने के कारण भारत की सभी भाषाएँ एक हैं, क्योंकि उनके शब्द एक हैं, उनकी तर्ज, भंगिमा और अदाएँ एक हैं तथा वे एक ही सपने का आख्यान अलग–अलग लिपियों में करती हैं।"

दिनकर ने लिखा है कि उनका यह पुस्तक रूपी महल साहित्य और दर्शन का है। इतिहास की हैसियत यहाँ किरायेदार की है। व्यापक शोध और नये नजरिये के विकास से हम 'संस्कृति के चार अध्याय' की बातों के समानांतर कई बातें प्रस्तुत कर सकते हैं लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तक समन्वय से बन रही हमारी धार्मिकता और भारतीयता का मार्ग तलाश करती है। यहाँ दिनकर का लक्ष्य बाहरी या भीतरी बताकर किसी धार्मिक हताशा या गौरव को उभारना नहीं है, बल्कि बिना भावनात्मक हुए इतिहास को आलोचनात्मक निगाह से देखना है। भारतीय संस्कृति के समन्वयी रूप को यह पुस्तक बार–बार उद्‌घाटित और प्रमाणित करती चलती है। दिनकर की आलोचनात्मक दृष्टि भारतीयता के निर्माण को हिन्दू पराजय या मुस्लिम विजय की दृष्टि से नहीं देखती बल्कि इन दोनों धर्मों की उन आदतों और कुरीतियों की पड़ताल करती है, जिसने भारतीयता की राह में अनेक रोड़े जाने–अनजाने बिछाये हैं।

पुस्तक की रचना को साठ से अधिक वर्ष हो चुके हैं और अपने रचना–काल से ही 'संस्कृति के चार अध्याय' की यात्रा निरंतर जारी है। भारत के बदलते सन्दर्भों में इसकी व्याख्या अपनी प्रासंगिकता को अक्षुण्य बनाये हुए है। दिनकर ने साफ किया है कि 'संस्कृति के चार अध्याय' इतिहास नहीं है, लेकिन जिस तरह से उन्होंने राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक क्रांतियों को परखा है, वह पुनर्पाठ के लिए पुख्ता जमीन तैयार करती है। 'संस्कृति के चार अध्याय' के दूसरे संस्करण में दिनकर ने काफी बदलाव किए और दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा है – "पहले संस्करण के बाद जो विवाद हुआ उससे पता चलता है कि इस किताब से सबको तकलीफ पहुँची होगी। इस किताब के बारे में मंचों से जो भाषण दिए गए, उनसे यह पता चलता है कि मेरी स्थापनाओं से सनातनी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

भी दुखी हैं और आर्यसमाजी तथा ब्रह्मसमाजी भी। उग्र हिन्दुत्व के समर्थक तो इस ग्रन्थ से काफी नाराज हैं। मेरा विश्वास है कि मेरी कुछ मान्यताएँ गलत साबित हो सकती हैं, लेकिन इस ग्रन्थ को उपयोगी माननेवाले लोग दिनोंदिन अधिक होते जाएंगे। यह ग्रन्थ भारतीय एकता का सैनिक है। सारे विरोधों के बीच वह अपना काम करता जाएगा।" "आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी, मूलतः, वह वैसा ही है। मिस्र, बेबिलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यताएँ उठी थीं; किन्तु काल ने उन्हें ध्वस्त कर दिया। केवल भारत ही एक ऐसा देश है, जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा है। भारत का अतीत कल भी जीवित था, आज भी जीवित है और कदाचित, आगे भी जीवित रहेगा।"[vi] स्पष्टतः दिनकर जी की यह रचना हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य और इतिहास की अमूल्य धरोहर है। जिसमें भारतीय संस्कृति के एक ऐसे समावेशी कालजयी स्वरुप का उद्घाटन हुआ है, जो निरन्तर है, नित्य–नूतन है, चिरंतन है।

सन्दर्भ

i आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का लेख 'संस्कृति के चार अध्याय', दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व, सं डॉ. जयसिंह नीरद, पृष्ठ संख्या–161.

ii डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित का लेख 'संस्कृति के चार अध्याय', दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व, सं. डॉ. जयसिंह नीरद, पृष्ठ संख्या–157.

iii भारतीय संस्कृति के आधार, विद्यानिवास मिश्र, सं. गिरीष्वर मिश्र, प्रभात प्रकाषन, दिल्ली–2006, पृ. 10.

iv संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ–4.

v हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाषन, दिल्ली–1997, पृ. 16.

vi संस्कृति के चार अध्याय, भूमिका।

RRIJM 2015, All Rights Reserved